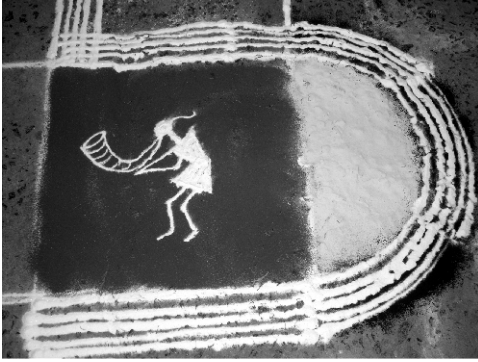


# लोक कला, संस्कृति के ध्वज वाहक संस्कार भारती के संदर्भ में

श्रीमती नीतू सिंह राजपूत\*



लोक-संस्कृति की परम्परा की अनुगामिनी है। लोक संस्कृति में मनुष्य जीवन के सारे संस्कार, उत्सव, पर्व, त्यौहार, आचार विचार और जीवन की समस्त अनुभूतियों का चित्रण होता है।

आज जीवन से लोक संस्कृति की वह कल्पना, रंगोली, कोहबर के चित्र, चौक पूरना, कलश रंगना, पंजों को रंगकर दीवाल पर छापा लगाना, द्वार का वंदनवार, सूखे रंगों की साक्षी, सब कुलुप्त हो रहा है। इस लोक संस्कृति की रक्षा करना और इसे जीवित रखना प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति का कर्तव्य है।<sup>1</sup>

लोक संस्कृति की रक्षा करने हेतु भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में कुछ सामाजिक संस्थाएँ संचालित की गई हैं। जिनमें से एक है, संस्कार भारती संस्था, लोक कला, संगीत, साहित्य, पुरातत्व, नाटक, रंगोली, प्राचीन कला, लोक चित्रकला, का संरक्षण संचालित करने वाली संस्था है। इसकी स्थापना 1981 में हुई थी। भारतवर्ष में लगभग यह चार स्तर पर संचालित होती है। जैसे— नगर, प्रान्त, क्षेत्र और राष्ट्रीय स्तर पर। इसी प्रकार इसके अलग-अलग पद एवं विधायें होती हैं। जैसे— मासिक, साप्ताहिक बैठकें आयोजित की जाती हैं। इसमें पुरुष व महिलाएँ विशेष रूप से जुड़े हैं। जो इसकी कार्यकारिणी की सदस्य हैं। यह सामाजिक संस्था है जो कला साहित्य को बचाने हेतु एक संगठन के रूप में सहयोग देती है। उदाहरण के रूप में जैसे नगर निगम द्वारा प्रतिवर्ष “नवसंवत्सर” महोत्सव की सम्पूर्ण रूप रेखा तैयार कर देश के प्रतिष्ठित संगीतज्ञों और लोक कलाकारों को आमंत्रित कर कला प्रस्तुति करवाना आदि। इस आयोजन हेतु नगर-निगम ग्वालियर द्वारा धनराशि उपलब्ध कराई जाती है। इससे जुड़े लोगों को मानदेय और आने जाने तथा खाने पीने का व्यय दिया जाता है। किसी भी अवसर पर लगभग पन्द्रह दिवस पूर्व से तैयारियाँ की

\* शोधार्थी—‘चित्रकला’, केन्द्र-शासकीय कमला राजा स्नातकोत्तर स्वशासी कन्या महाविद्यालय जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) मोब-9407202034

जाती है सभी विधाओं के साथ रंगोली का विशेष महत्व है जो भूमि पर सृजित की जाती है। यह पवित्र कला है। इस का संयोजन भी संस्कार भारती द्वारा किया जाता है।<sup>2</sup>

रंगोली को भू-अलंकरण भी कहा जाता है। भू-अलंकरण अत्यंत धार्मिक और पवित्र भावना है, यह एक प्राचीन प्रार्थना है, सुरक्षा, समृद्धि एवं दीर्घायु के लिये की गई प्रार्थना<sup>3</sup> हमारे सारे पर्व परम्पराओं के हस्तांतरण का ही अवसर हुआ करते हैं, उसमें भी लोक कलाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचाने का काम खुद घर की महिलाएं करती हैं। संस्कार भारती की रंगोली को महिलाएं सीखती हैं और नई पीढ़ी को इस कला में पारंगत करती हैं।<sup>4</sup>

घर के साफ सुथरे समार्जित आँगन में बनी छोटी सी रंगोली उस घर का अलंकरण होती है। ऐसे घरों में राष्ट्र की संस्कृति के दर्शन होते हैं। “ यह कहावत बहुत अर्थपूर्ण है, द्वार के सम्मुख तुलसी, वृद्धावन के पास बनी रंगोली चिन्ह उस घर की स्वच्छता, शुद्धता, प्रसन्नता, पवित्रता एवं भारतीयता को प्रकट करती है।<sup>5</sup>

ग्वालियर संस्कार भारती की महिला मंत्री द्वारा साभार प्राप्त जानकारी अनुसार— रंगोली से सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाहन होता है। सबका कल्याण हो ऐसी भावना हृदय में लेकर इस कार्य को संस्था की महिलायें अंजाम देती हैं जिन आयोजनों में रंगोली सृजित होती है उस स्थान की महिलाओं का सम्मान व आदर की दृष्टि से देखा जाता है। ग्वालियर में होने वाले आयोजनों जैसे— नवसंवत्सर, गुड़ी पड़वा, राजनैतिक, सांस्कृतिक आयोजनों एवं मंदिरों आदि में इस संस्था द्वारा रंगोली का निर्माण किया जाता है।<sup>6</sup>

श्यामल या हल्के लाल रंग की भूमि पर सफेद चूर्ण (संगमरमर या चावल, आटा) से बिन्दुओं को जोड़कर भिन्न-भिन्न आकृतियां बनती हैं, तो वे सिर्फ सरल रेखा, चन्द्र, सूर्य, स्वास्तिक, श्रीपद्म, गौपद्म, शंख, चक्र आदि अर्थपूर्ण प्रतिकों से प्रकाशमयता, तेजस्वीतता, शीतलता, गतिमानता, बुद्धि, समृद्धि, सृजनशीलता जैसे सुन्दर भावनाओं के सुदर्शन, संस्कार देखन वालों के अन्तःकरण में गहराई तक समा जाते हैं।<sup>7</sup>

“ सौन्दर्य का साक्षात्कार एवं मंगल कामना यह रंगोली का प्रमुख उद्देश्य है। आशय सम्पन्न शुभ प्रतीक चिन्हों के माध्यम से कल्याण की भावना विचारों की सौन्दर्य पूर्ण अभिव्यक्ति रंगोली का मुख्य उद्देश्य है। रंगोली विन्दु प्रधान, आकृति प्रधान, भक्ति प्रधान, बल्लरी प्रधान, प्रकृति प्रधान प्रकार की होती है। मुख्य रूप से आकृति एवं बल्लरी प्रधान यह दो रूप हैं। आकृति प्रधान रंगोली में रेखा, कोन, वर्तुल आदि का सन्तुलित उपयोग करके रंगोली बनाई जाती है। राजस्थान, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत, उत्तर भारत, इन प्रदेशों में आकृति प्रधान रंगोली निकालने की प्रथा है।



बल्लरी प्रधान रंगोली में फूल-पत्ति वृक्ष बल्लरी, पशु पक्षी की प्रधानता है। ऐसी रंगोली बनाने में बंगाली महिलायें सिद्धहस्त होती हैं।<sup>9</sup>

बिन्दुओं से जो रंगोली बनाई जाती है वो अधिकतर ज्मामितिय होती है हिन्दू धर्म में रंगोली बनाना शुभ माना गया हैं। रंगोली मे जो शुभ चिन्ह

का उपयोग होता है प्रतीकात्मक होते है जैसे— 1. बिन्दु मातृत्व का प्रतीक है। 2. ध्वज—त्याग का 3. कलश — विश्व रचना 4. सरल रेखा — सरल स्वभाव 5. अर्धवर्तुल—धारण शक्ति का प्रतीक है। 6. वर्तुल—पुर्णिमा के चाँद 7. केन्द्र वर्धनी—विश्व अनंतता का 8. गोपदम—लक्ष्मीपद का 9. स्वस्तिक—महाशक्ति 10. ओभित्येकार—सृष्टि का स्वर ओम है 11. श्रीकार — ब्रह्मा अक्षर 12. शंख —ध्वनी 13. चक्र— परिवर्तन 14. गदा —देवता के शस्त्र 15. पदम —भगवती का आसन 16. शर —एकाग्रता 17. धनुष— दुष्ट प्रवृत्ति के निर्दलन का प्रतीक 18. सर्परेखा —वायु पानी —समाधान का प्रतीक है।<sup>9</sup>

“संस्कार भारती” का दृष्टिकोण भारतीय संस्कारों का जागरण करना सामूहिक भाव जाग्रत करना एवं समाज मे सामूहिक उल्हास और सामूहिक प्रयास की भावना जागृत करना है।

वैसे रंगोली अल्पकला है परन्तु यह कला परिणामतः बहुत बड़े सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करती है व्यक्ति — व्यक्ति में सुप्त कला को जागृत करती है बिन्दू बिन्दू जोड़ने से विशाल सौन्दर्य कृति का निर्माण होता है वैसे ही समूह मे कार्य करने से समाज के संगठित स्वरूप का निर्माण होता है एकता का भाव सामूहिक रूप से प्रकट होता है संस्कार भारती कला के क्षेत्र में संस्कार संपन्न समाज के विराट रूप को साकार करने के लिये प्रयासरत है।<sup>10</sup>

अतः लोक संस्कृति की रक्षा करना और उसे जीवित रखना इसे चुनौतियों से बचाना और इसी प्रगतिशील प्रक्रिया को आगे बढ़ाना प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति का कर्तव्य है समाज की रचना लोक संस्कृति का वरदान है। आज संस्कृति में भी प्रदुषण आ गया है। हमें चाहिये कि हम आपने हाथों से अपनी संस्कृति का विनाश न करें।<sup>11</sup>

### संदर्भ सूची

1. चैतन्य डॉ. भगवानस्वरूप—लोकमंगल, अमृताभिनन्दन ग्रन्थ तिवाारी, डॉ. पूनमचन्द, पृष्ठ—156, 157, 158

2. शोध सर्वेसण दौरान संस्कार भारती की महिला मंत्री, श्रीमती अनीता करकरे द्वारा आभार प्राप्त जानकारी
3. संस्कार भारती के राष्ट्रीय सम्पर्क प्रमुख—कामतानाथ वैशम्पायन से साभार प्राप्त जानकारी
4. समाचार पत्र, नई दुनिया—नायिका, बधुवार 23 अक्टूबर 2013 पृष्ठ क्र. 1
5. करकरे श्रीमती अनीता — लोकायतनम् संस्करण 2012 पृष्ठ क्र. 282
6. श्रीमती अनीता करकरे से साभार प्राप्त जानकारी
7. करकरे श्रीमती अनीता — लोकायतनम् संस्करण 2012 पृष्ठ — 282
8. करकरे श्रीमती अनीता — लोकायतनम् 2012 पृष्ठ — 282, 283
9. कृपया देखे, आकृति प्रधान रंगोली
10. करकरे श्रीमती अनीता — लोकायतनम् 2012 पृष्ठ — 284
11. चैतन्य डॉ. भगवानस्वरूप लोकमंगल, अमृताभिनन्दन ग्रन्थ वाही, पृष्ठ—158

# EDUCATIONAL ETHICS IN VARNASHRAMA VYAVASTHA: A LEGACY

Dr. R.S. Dixit

## Abstract

*Human needs beget social organizations. Human needs are defined in terms in human interests, purposes and aspirations. The adjustments of human behaviour with these purposes and aspirations define actual planning of the social organization. The Hindu conception of life and its conduct is also organized in terms of such considerations.*

*Hindu sages agree that any scheme of social organization aiming at the best functioning of every human being as a social unit must consider firstly man as a social being with reference to his training and development in the natural and social environment in order to fulfill his final aim of his existence and secondly this has to be coordinated with another scheme which studies man in terms of his natural endowments, dispositions and attitudes. These two problems are undertaken in the scheme of "ashrama" and "varna" respectively together known as "varnashrama vyavastha". It refers to the nurture and the nature of man. The scheme of "ashramas" devised by the Hindus is a unique contribution in the whole history of the social thought of the world.*

*This paper endeavours to investigate the institution as a socio - psychological phenomenon rather than discuss the purely psycho - physiological techniques of education or training process which is generally construed as the subject matter of Educational Psychology as practiced among the Hindus since archaic times.*

## INTRODUCTION

In order to understand the psycho - moral basis of the "ashramas" properly, it is imperative to understand the theory of "purusharthas". This theory concerns with the understanding, justification, management and conduct of affairs of the individual's life in relation to the group, in and through the "ashramas". The "purusharthas" are four namely, 'dharma', 'artha', 'kama' and 'moksha'. These are the psycho - moral bases of the "ashrama" theory as on the one hand, the individual's life in relation to the group, in and through the "ashramas". The "purusharthas" are four namely, 'dharma', 'artha', 'kama' and 'moksha'. These are the psycho - moral bases of the "ashrama" theory as on the one hand, the individual receives a psychological training through the "ashramas" in terms of

---

\*Dept. of History, D.A.V. (P.G.) College, DEHRADUN - 248001, Mob. : 9837318301

lessons in the use and management of the "pursusharthas" while on the other hand, in actual practice, individual has to deal with the society in accordance with these lessons.

The word 'ashrama' is originally derived from the Sanskrit root 'srama' meaning 'to exert oneself', therefore, it may mean a place where exertions are performed and the action of performing such exertions. Literally, 'ashrama' refers to a resting place. Therefore, the word signifies a half or a stoppage or a stage in the journey of life for the sake of rest in order to prepare oneself for the further journey. The 'ashramas' are to be regarded as resting places during one's journey on the way to final liberation which is the main aim of life. 'vyasa' says in 'Mahabharata' that the four stages of life form a ladder of four steps. The 'ashramas' are four in number, namely. (a) the brahamacharya - that of a student; (b) the grihastha - that of a married man or the householder; (c) the vanaprastha - that of a retired life in the forest, after abandoning the home, preparatory to complete renouncement of worldly relations and (d) the samnyasa - the life of complete renunciation of worldly relations and attachments.

According to the Hindu Dharma - Sastra, each individual should normally pass through four phases of life, one after another and live in them in accordance with the 'sastras' if he desires to obtain salvation (maksha). Before entering into last phase, i.e., 'samnyasa' individual has to pass through the previous three phases of life in their proper order besides he has to carry out the duties and obligations laid down for each of the 'ashramas' and he has to see that he has duly given his dues in connection with the social obligations or three 'debts', namely, the debt to the 'rishis', the debt to the ancestors and the debt to the Gods. These three debts could be vicariously satisfied respectively by studying Vedas in accordance with the rules laid down for the study (by passing through Brahamacharyasrama); by begetting sons in accordance with the capacity (by performing duties of the vanaprashthasrama).

## **SIGNIFICANCE OF PURUSHARTHAS IN VARNASRAMA VYAVASTHA**

The upanayana ceremony introduces the young boy into the Brahamacharyasrama. After the studies is over in accordance with the dharma laid down for the brahmachari, he takes a holy bath symbolic of his competition of that asrama course and now he becomes a snataka. He now becomes fit to enter the next asrama, i.e., grihasthasrama.

In the brachacharyasrama, dharma is the predominant purushartha. Dhrama has to be learnt up in all its aspects and ramifications and it has to be practiced particularly as a check upon kama and artha because these latter two are far from the objectives of the young trainee, moreover, the ultimate value of maksha has to be learnt during this ashrama. In the grihasthasrama, both artha and kama become the field of the personality of the individual who has already acquired a knowledge and practice of dharma and who has studied the value and place of moksa for his self realization. It must be kept in the mind that kama and artha are essential part of the heritage of the both human individual and hence they form part of the natural, physical and psycho-physiological instrument for the functioning of both the group and the individual. However, this instrument has been misused and malfunctioned by individuals and races. Now instead of demanding a total rejection of them as merely base and worthless, the Hindu sages have taught that artha and kama shall be wisely directed into proper life=functions as prescribed by dharma and hence artha and kama have been so placed in the ashram scheme that by right functioning they contribute to the growth and development of human race.

## **THE SOCIAL PSYCHOLOGY OF EDUCATION**

The brahmacharyasrama deals with the management of education as a social institution. The main aim of this paper is to investigate the institution as a socio=psychological phenomenon rather than discuss the purely psycho-physiological techniques of education or training process which is generally construed as the subject matter of Educational Psychology.

Outlook and methods of education prevalent in a society have a far reaching significance and influence upon the other social institutions of the society. This significance is of mutual nature whereby the system of education prevalent amongst the society influences as if also gets influenced by the society which it serves by its norms, values and mores. Education is the main instrument by means of which it passes on the to the individuals the traditions, disciplines and culture it has gathered through long and continual endeavours of mankind making the best of the gifts of human life. It trains the individual to adjust himself to the ideas and ideals that have made the history of the society. Evidently amongst all the social institutions, the system and outlook of education is of primary significance. For example, a state may dispense with religion as the

erstwhile USSR tried to do or a state may refuse to distinguish fixed forms of sexual union like marriage, but education is indispensable to any society as all the accumulated knowledge of the ages and all standards of conduct would be lost without it. Panunzio (1939) maintained that "the primary function of the educational system is to transmit a knowledge of the forms and skills society regards as indispensable to its survival and improvement. That system regularizes the knowledge-transmitting activity; inculcates the folkways and mores; trains the young to fit into the established cultural scheme, aims to aid the individual in the development of personality and aptitudes; and sets forth the breadlines which the society believes must be followed in order to survive and improve". Summer (1906) held that education transfers the mores to the individual; i.e., "He learns what is approved or disapproved ; what kind of man is admired most; how it ought to behave in all kinds of cases; and what he ought to believe or reject". Thus along with imparting knowledge and skills, education also transmits the particular system of morals, social and cultural values of the group and thus undertakes the indoctrination of both the rational and emotional elements which make up the adult individual. Education is essential to both the renewal and the growth of human society.

### **THE HINDU HOME**

In the Hindu home, every male child stated his educational career by observing some rites and rituals associated with the upanayana ceremony. The earliest reference to this ceremony is probably found in the Atharva-Veda, where the Sun is described as a Brahmana student approaching his acharya with firewood and alms. The Satapatha brahmana describes that the acharya places his right hand upon the head of the pupil symbolising the imparting of the very core of his own personality to the pupil and on the third night such personal inner splendor of the teacher supposedly enters the very core of the pupil's whole being and thereafter the pupil becomes a true Brahmana on being taught the Savitri Mantra. Smriti and Grihya Sutra have given elaborate descriptions of rites to be performed at the Upanayana ceremony. A girdle has now to be tied round the waist of the young boy to be initiate. This girdle is to be made of munja for Brahmana, of bow-string for Kshatriya and woolen thread for a Vaishya boy. Then the boy is given a staff or danda and a sacrificial cord is adjusted round his body. The acharya then inquires after the name, family and other particulars of the boy and asks



whether he is serious to undertake the vow of brahmacharya under his instructions.

The upanayana samskara is virtually regarded as the second birth of the young boy and till this ceremony is not performed, every child is considered as nature-born and as such as good as sudra. After upanayana ceremony the child becomes a dvija or twice-born and enjoys the full rights of an Arya.

These elaborate rituals and ceremonies centered round the upanayana have a great social significance. They create an atmosphere of dignity and seriousness about the occasion and hence they serve to impress the minds of the individuals or the group participation in the ceremonies with the deeper significance attached with it. With the performance of the upanayana ceremony of the child, the child gets his first lesson of simple living and tolerance of frustration irrespective of the status of the family in which he is born. In all humility and reverential attitude the initiated child had to start begging alms for his teacher. Next there are rules regarding taking meals for the students. According to Manu, he should take meals only twice a day and must abstain from taking a third between the two. He has to avoid over-eating as it causes ill-health, shortens the life and prevents acquisition of the spiritual merit, will not lead to heaven and is condemned by men. Students should never eat flesh and honey. Mahabharata says: "Eating morning and evening is an ordinance of the Gods. It is ordained that no one should eat anything between these periods". Manu says regarding the dress of the students that a Brahmana student shall wear a piece of hempen cloth, a Kshatriya student shall wear a piece of silken cloth and a Vaishya student shall wear a piece of woolen cloth just enough to cover the body. Each of these three have to put on upper garments made of skins of antelope, of ruru and of the goat respectively. The Brahmana student should wear a piece of cloth dyed with madder and the Vaishya student should wear a cloth dyed with turmeric or made of raw silk. The sacred thread to be worn by students should be made of cotton for the brahmana, of hempen for the kshatriya and of woolen for the Vaishya students. It is worth noting that the higher the Varna, the less luxurious is the quality of cloth to be worn by them. The staff held by the students should be straight, unburnt and pleasing in appearance. It is only meant for safety of the students and not for deliberately offensive purposes. Students are also required not indulge in luxuries such as anointing the eyes, using scents,

umbrella and shoes. He is not supposed to embellish his body with ointments nor to enjoy dancing, music and playing on the instruments or take part in gambling or useless gossiping. Students are to preserve their vow of brahmacharya and are not to talk to women more than necessary. They are to speak truth, be modest and possess self control and keep themselves free from lust, anger and greed. They have also to behave without causing any harm to any one. Thus, the Hindu student was trained in the habits of simple life no matter to what family he belonged.

In India irrespective of the social status of the family they had to take up same mode of life. In the Mahabharata and the Ramayana there are several instances displaying how even princes had to undergo the same rigours of the students' life along with their poorest fellow students. The students has to rise up early in the morning before sun-rise and take bath everyday. Among Hindus it was unique that the students had to live in the premises of the guru. This unique system had a special bearing upon the minds of the young students. Presumably the young boy may come in contact with environment and surrounding which ma not be conducive to his free and healthy moral mental development. Moreover, some family prejudices and beliefs may obstruct the free and proper development of his faculty of reason. The young child was placed in the hands of the guru at an age when his attitudes towards things and persons around him was not yet farmed and fixed. At this stage his mind is so flexible that it should be the duty of the parents to place him under the care of a tried person of a high moral character. Childhood is the formative period of life when suggestions and imitations play great part in one's life and the individual's character is due to the various impressions his mind has received during childhood. Among Hindus the young boy had to live with the acharya away from his near relations in an environment free from temptations and full of simplicity. This system may claim another advantage vis-à-vis modern school system. The former avoided any occasion of conflict between the teacher and the family whereas in the latter the child finds itself divided between two kinds of interests. Therefore, the Hindus correctly say acharya as the "spiritual father" of the student.

The moral influence of the teacher upon his students acquired weight as the teacher did not charge fees. It has another significance in that the education of the Hindu child never depended upon the financial position of the family in which he was born nor did the quality of education suffer due to the lack of capacity to spend money over it. Thus, education was

not dependent nor controlled by external factors such as financial beneficiaries, ruling authorities or political system. Knowledge was never given with any material motives and it was also not acquired with such a motive. As such there was not competitive examinations thereby grading the students' ability. It was sacred duty to acquire knowledge for its own sake. Such as absence of material motive in learning had a tremendous psychological impact in keeping it free from many evils with modern educational institutions are infested with.

### **CONCLUDING REMARKS**

The salient features of the Hindu educational system display how it functioned as a social organizations with a view to creating strong personalities whose was to keep ever awake, whose mental powers and capacities were well-developed and whose understanding of the meaning of life was founded upon and broad basis unaffected by any political, family or secular interest and whose intellectual impulses to learn was kept pure and alive not government by material motives.

### **REFERENCE**

1. The Mansumriti.
2. The Mahabhart.
3. The Ramayana.
4. Satpath Brahmana.
5. Grihya-Sutra.
6. Sumner, W.G: "Folkways". New York, 1906
7. Panunzio, C: "Major social institutions". New York, Macmillan, 1939.
8. The Kamasutra: Vastyayana.
9. The Arthashastra: Kautilya.
10. Lowie, R.H: "Social Organizations". London, Routledge, 1950.
11. Williams, J.M: "Principles of Social Psychology". New York, 1920.

# संगीत : एक चिकित्सा

डॉ पुनीता श्रीवास्तव\*

संगीत विषय को चिकित्सा या किसी भी अन्य विषय के साथ जोड़ना एक अनूठा प्रयास रहता है। संगीत जीने के लिये आवश्यक तो नहीं, किंतु जीवन को समृद्ध बनाने का एक सशक्त मार्ग है। 'चिकित्सा शास्त्र' विज्ञान की एक प्रमुख शाखा है, किन्तु संगीत को भी विज्ञान से अलग नहीं रखा जा सकता। यह एक ऐसा विषय है जिसमें ललित कला है, तो ध्वनि विज्ञान भी है। संगीत मूलतः ध्वनि विज्ञान की ही एक शाखा है, जिसमें बाईस श्रुतियों की ध्वनियाँ, भिन्न-भिन्न राग रागिनियों द्वारा मानवीय चिंतन, व्यवहार एवं वातावरण को प्रभावित करती हैं, एवं संगीत चिकित्सा में अपना चमत्कारिक प्रभाव छोड़ती हैं।

'संगीत चिकित्सा' एक सहयोगी चिकित्सा है, जो कि भारतीय परंपरा में प्राचीन काल से ही प्रचार में रही है। यह शारीरिक असंतुलन को लयबद्ध करते हुए तन मन को स्वस्थ करती है। संगीत की चमत्कारिक शक्ति के कारण ही मानव ने ईश्वरोपासना, मनोरंजन इत्यादि के अतिरिक्त चिकित्सकीय क्षेत्र में भी इसके प्रयोग किये। कहा जाता है कि प्रथम विश्वयुद्ध के समय घायल सैनिकों की पीड़ा की अनुभूति कम करने के लिये भी संगीत चिकित्सा का प्रयोग किया गया था। इस प्रयोग की सफलता देखकर अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी व आस्ट्रेलिया जैसे देशों में भी संगीत थेरेपी पर कार्य करने वाले संगठन खोले गये।<sup>1</sup> सन् 1936, 37, 38 में लाहौर के डॉ जे. पाल जो चैम्बर लेन रोड में रहते थे, संगीत द्वारा ही चिकित्सा करते थे। उनकी दुकान का नाम म्यूजिकल मेडीकल इन्सटिट्यूट था।<sup>2</sup>

अब हमारे समक्ष यह विचार आता है कि संगीत में ऐसे कौन से गुण हैं जिन से यह चिकित्सा इतनी प्रभावशाली बनती है। वस्तुतः संगीत एक प्रकार का योगाभ्यास है, जिसमें लय व सुरों के अनुपात में श्वाच्छोवास होते रहने के कारण पाचन शक्ति बढ़ती है, जठर शुद्ध रहता है, नींद अच्छी आती है, मन एवं शरीर जाग्रत होता है।<sup>3</sup> विश्व प्रसिद्ध चिकित्सक मेक्फेडन ने गायन को उच्चस्तरीय व्यायाम की संज्ञा प्रदान की है।<sup>4</sup> संगीत चिकित्सा में संगीत के तीनों अंग गीत, वाद्य व नृत्य समान भूमिका निभाते हैं।

संगीत में लिये जाने वाले आलाप तानों में फेफड़े सक्रिय होकर पर्याप्त ऑक्सीजन मानव शरीर के अंदर पहुँचाते हैं, जिससे रक्त संचार में वृद्धि पाचन क्रिया में सुधार होता है। हमें ज्ञात है कि हमारे हाथ व पैरों में कुछ प्रेशर पॉइंट होते हैं, जिन्हें दबाकर शरीर के समस्त अंगों की चिकित्सा की जाती है, इस पद्धति को

\* व्याख्याता:— संगीत (कंठ), राजकीय महाविद्यालय बूंदी

एक्यूप्रेशर कहा जाता है। जब हम पखावज, तबला, सितार आदि वाद्य यंत्र बजाते हैं तो स्वतः ही अनेक रोगों का निवारण हो जाता है। इसी प्रकार नृत्य में भी शरीर के समस्त अंगों के संचालन के साथ ही समस्त अंगों का व्यायाम भी हो जाता है। शास्त्रीय नृत्य व ऐरोबिक के बीच प्रसिद्धनृत्यांगना नीलम शर्मा ने बहुत ही अच्छा तालमेल बिठाया है।<sup>६</sup> इस प्रयोग से रीढ़ व पोस्चर संबंधी रोगों से निजात मिलती है व शरीर में लचीलापन आता है।

गर्भावस्था में संगीत चिकित्सा द्वारा माँ व गर्भस्थ शिशु में अनेक सकारात्मक परिणाम देखे जा सकते हैं। जैसे— शिशु का तनावमुक्त होना, प्लेसेंटा में रक्त प्रवाह का सुचारु रूप से नियंत्रण, गर्भवती स्त्री की श्वसन गति व दिल की धड़कन का नियंत्रण, अपरिपक्व शिशु की विकास गति का बढ़ना, गर्भवती महिलाओं के सायकोसोमेटिक समस्याओं पर नियंत्रण व सुगम प्रसव की संभावना।<sup>७</sup> संगीत चिकित्सा द्वारा न केवल बिना किसी साइड इफेक्ट के बेहतर परिणाम सामने आ सकते हैं, बल्कि संतान की बौद्धिक क्षमता बहुआयामी व उत्कृष्ट होने की संभावना भी बनी रहती है। डॉ. वसुधा कुलकर्णी के अनुसार वायलिन की मधुर ध्वनि अति तीव्र सिर दर्द को 15 मिनट में दूर कर सकती है एवं हार्प (एक वाद्य) से हिस्टीरिया रोग दूर हो सकता है।<sup>८</sup> आपके अनुसार अमेरिका में तो संगीत को नींद की गोली माना गया है। डॉ. एच. वालसे के अनुसार जुकाम, पीलिया, अपच, यकृत, रक्तचाप जैसे रोगों में शास्त्रीय गायन का अच्छा प्रभाव पड़ता है।<sup>९</sup>

संगीत चिकित्सा का प्रभाव मानव के अतिरिक्त वनस्पति व पशु-पक्षियों पर भी पड़ता है। डॉ.टी.एन.सिंह ने धान, चना व सेम आदि पौधों पर संगीतिक ध्वनियों का प्रयोग कर निष्कर्ष निकाला कि कांबोजी को बांसुरी पर, खरहरप्रिया को वीणा पर तथा बहार को वायलिन पर बजाने से पौधों की वृद्धिसवा या डेढ़ गुना बढ़ गयी।<sup>९</sup> अमेरिका में गायों का दूध निकालते समय मधुर संगीत सुनाने से वे पहले से अधिक दूध देने लगीं।

राग रागिनी सिद्धांत प्रकृति से संबंधित तो है ही, साथ ही मानव मन से भी संबंधित है। जैसे काफी के कोमल श्गश् शनिश् मानव में उत्साहवर्धन का काम करते हैं। कल्याण का तीव्र 'म' निराशा तथा मानसिक तनाव से मुक्ति दिलाता है। केदार राग के स्वर मन को शांति प्रदान करने की क्षमता रखते हैं तथा डिप्रेशन से छुटकारा दिलाते हैं। कोमल श्गश् श्धश् व शनिश् वाले राग अनिंद्रा की समस्या का निवारण करते हैं। सितार वादन की मीठी मीढ़ युक्त ध्वनि से दर्द की पीड़ा व माइग्रेन से छुटकारा मिलता है। चैन्नई स्थित श्राग अनुसंधान केन्द्रश् के अनुसार श्राग आनंद भैरवीश् हाइपरटेंशन को कम करता है तथा 'शंकराभरणम्' मानसिक रोगों में राहत पहुंचाता है।<sup>१०</sup>

श्री रमेश सकसैना ने अपने अध्ययन द्वारा विभिन्न रागों का विभिन्न रोगों पर प्रभाव स्वीकारा है, जो कि इस प्रकार है—

भैरव	— कफ संबंधी समस्या में।
मल्हार, सोरठ व जयजयवंती	— ऊर्जा प्रदान करने तथा मस्तिष्क को शांत कर क्रोध दूर करने में।
आसावरी	— रक्त, वीर्य, कफ आदि रोगों में।
भीमपलासी, मुलतानी व पटदीप	— नेत्र रोग दूर करने में।
दरबारी	— हृदय शूल, हृदय रोग व गठिया रोग में। <sup>11</sup>

संगीत द्वारा शरीर में 'इम्यूनोग्लोबिन' नामक एक फायदेमंद प्रोटीन की वृद्धि होती है। यह शरीर के अंतः स्रावों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है जिससे रक्तचाप, हृदयगति व श्वसन क्रिया में सुधार होता है। विश्व की जानी मानी संदर्भ पुस्तक 'कॉम्प्रिहेन्सिव टेक्स्टबुक ऑफ साइकेट्री' में भी संगीत चिकित्सा को स्वीकारा गया है।<sup>12</sup> प्लेटो के अनुसार "संगीत के माध्यम से आत्मा" स्वर व लय सीखकर परिष्कृत हो जाती है। इससे मानव की चिंतन शक्ति बढ़ जाती है व चित्त की एकाग्रता बढ़ जाती है, जिससे मानव का मानसिक व शारीरिक विकास होता है।"

संगीत के प्रभाव से राग 'मालकोंस' से पत्थर पिघलने, 'दीपक राग' से दीपक जल उठने 'मल्हार राग' से वर्षा होने के दृष्टांत हम हमेशा से सुनते चले आ रहे हैं। अतः रागों के इन प्रभावों को केवल केवल किवंदंती मात्र मानकर हम नकार नहीं सकते हैं।

### संदर्भ सूची

1. संगीत' (मासिक) नवम्बर 2009, पृष्ठ—3
2. प. भगवत शरण शर्मा—संगीत निबन्ध मंजरी, पृष्ठ—20
- 3- S N RATANJANKAR – Aesthetic Aspects of India's Musical Heritage 1992
4. संगीत (मासिक) अप्रैल 2005—पृष्ठ—28
1. संगीत (मासिक) अप्रैल 2005, पृष्ठ—43
2. भास्कर खांडेकर — संगीत कला विहार, जून 2006 पृष्ठ—30
3. डॉ वसुधा कुलकर्णी — भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान 1990 पृष्ठ—138
4. आचार्य श्रीराम शर्मा — सामवेद संहिता (भूमिका), पृष्ठ—9
5. डॉ.टी.एन.सिंह — संगीत (मासिक) सितम्बर 2005, पृष्ठ—35
1. संगीत (मासिक) नवम्बर 2009, पृष्ठ—4
2. संगीत (मासिक) जून 2005, पृष्ठ—4
3. संगीत (मासिक) नवम्बर 2009, पृष्ठ—3
1. प्रणव भारती — पं ओंकार नाथ ठाकुर
2. भारतीय इतिहास में संगीत — भगवत शरण शर्मा
3. खण्ड ज्योति (मासिक)
4. संगीत (मासिक)
5. संगीत कला विहार (मासिक)
6. संगीत चिकित्सा — डॉ सतीश वर्मा
7. सामवेद संहिता — पं श्रीराम शर्मा आचार्य

# नई कविता में आधुनिक युग—बोध तथा वैयक्तिक चेतना

डॉ० निशा वालिया\* एवं डॉ० राखी उपाध्याय\*\*

किसी भी कविता का नई कविता होने से पूर्व कविता होना आवश्यक है। कविता का इतिहास एक लम्बी यात्रा करके नई कविता तक पहुँच पाया है। भामह की “शब्दार्थो सहितौ काव्यम्” तथा रुद्रट की “ननु शब्दार्थो काव्यम्” जैसी परिभाषाओं को देने के बाद संस्कृत काव्य परम्परा में एक सहस्र वर्ष बाद यह परिभाषा कुछ स्थान पा सकी— “रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्”। लेकिन कोई भी काव्य लक्षण सर्वसम्मत न हो पाया।

हिन्दी कविता आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल की यात्रा करती हुई आधुनिक युग में आकर कई रूपों में बँट गई तथा प्रत्येक वर्ग ने अपनी सुविधा के अनुरूप कविता को परिभाषित किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में कविता राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी तो छायावादी कविता ने सांस्कृतिक—दार्शनिक तत्त्वों को अपने अन्दर समाहित कर लिया। प्रगतिवाद ने कविता की परिभाषा समाज से जोड़कर की और प्रयोगवादी कवि अज्ञेय ने तो यहाँ तक कहा कि साधारण का साधारण वर्णन कविता नहीं है। कविता तभी होती है जब साधारण पहले निजी होता है और फिर व्यक्ति में छनकर साधारण होता है।

नई कविता ने स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज के यथार्थ को सही अर्थ में अनुभव के स्तर पर भोगा और अभिव्यक्त किया। उसने सत्य का अनुभव ही नहीं किया वरन् अपनी बौद्धिक दृष्टि से अनुभवों का मूल्यांकन भी किया है। नई कविता मानव के निकट की धारा है। हिन्दी काव्यधारा में नई कविता का सामूहिक व्यक्तित्व निश्चय ही सामर्थ्यवान और जीवन्त है। नई कविता छायावाद के बाद की अत्यन्त सशक्त और जीवन्त काव्य धारा है। यह नये आयाम तथा नये क्षितिजों के निर्माण में सजग रही है।

काव्य की प्रकृति युग सापेक्ष और समाज में जीवन के अनुरूप होती है। नई कविता दो रूपों में अपनी पहचान प्रकट करती हुई दिखती है— एक कविता वह है जो स्वभाव से बोझिल, दुरुह, उलझी हुई है। इनमें उन कविताओं को स्थान दिया जा सकता है जो सामाजिक न होकर व्यक्तिगत धरातल पर आधारित हो, साथ ही सामाजिक चेतना, वस्तु और प्रगतिशील दृष्टि का दावा करती हो। दूसरी कविता वह

\*असिस्टेंट प्रोफेसर, dr.nishaw@gmail.com, हिन्दी विभाग डी०ए०वी० (पी०जी०) कॉलेज, देहरादून

\*\*एसोसिएट प्रोफेसर, drakhi\_418@rediffmail.com, हिन्दी विभाग डी०ए०वी० (पी०जी०) कॉलेज, देहरादून

है जो पारदर्शी होती है जो पाठक के लिए अबूझ पहेली नहीं होती। वह पाठक के अन्तर्मन में जाकर अपनी पैठ निश्चित करती है।

नई कविता को एक काव्यान्दोलन के रूप में विज्ञापित और प्रतिष्ठापित करने का श्रेय 'नयी कविता' 'पत्रिका' को ही है। यह पत्रिका सन् 1954 ई० में प्रयाग की 'साहित्य सहयोग' नामक सहकारी संस्था द्वारा प्रकाशित हुई। 'नयी कविता' पत्रिका के अतिरिक्त मासिक पत्र 'प्रतीक' 1946 तथा 'नये पत्ते' सम्पादक — लक्ष्मीकांत वर्मा एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भी नयी कविता का स्वरूप प्रतिष्ठित करने में सहयोग दिया है।

बीसवीं सदी की काव्य सीमा में प्रवेश करने पर नई कविता की जो विशेषता अपनी ओर आकर्षित करती है वह है वैयक्तिकता, सामाजिकता तथा राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने वाले गीति (लीरिक) एवं प्रगीत इसी वैयक्तिक चेतना के सूचक है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूँजीवादी देशों में भ्रष्टाचार, घूस और अन्याय का इतना बोलबाला हुआ कि उससे सत्य, न्याय, अहिंसा, विश्वास और प्रेम जैसे मानवीय मूल्यों का लोप हो गया। साम्यवादी देशों में नैतिक मूल्यों का अस्तित्व समाप्त हो गया। नया कवि इस स्थिति से विक्षुब्ध हो उठा। वह समाजोन्मुख न होकर वैयक्तिक हो गया। उसने व्यक्ति की विवशता, भय की अनुभूति, असहायता की भावना तथा अमानवीय भाव बोध को पहचाना और उन्हें जीवन के वृहद् यथार्थ में रखकर नई कविता की पृष्ठभूमि तैयार की।

नये कवि की बेबसी सामाजिक यन्त्रणाओं के प्रति है, वह बन्दी है समाज के सड़े-गले कटघरों में, जर्जर रूढ़ियों में। इस लड़ाई में उसका 'मैं' आहत हो उठता है और आरोपित 'मैं' का अस्तित्व प्रदर्शन की वस्तु बन गया। भोगे हुए यथार्थ, झेले हुए यथार्थ की प्रामाणिक अनुभूतियों के साथ-साथ सार्थक अनुभूतियों की अभिव्यंजना नई कविता की अन्य उपलब्धि कही जा सकती है। प्रेम को सहजता का आयाम नई कविता ने दिया और प्रेम मध्यकालीन दार्शनिकता, बोझिलता एवं छायावादी रहस्यात्मकता से मुक्त हो गया। नये कवियों ने प्रेम एवं वैयक्तिकता को उदारता एवं विराटता प्रदान की गयी।

नई कविता में कवि का आधुनिक युग बोध एवं वैयक्तिक चेतना सामाजिकता को आहत नहीं करती। सामाजिक मूल्यों के क्षेत्र में नई कविता ने यथार्थ जीवन को अभिव्यक्ति दी। सर्वहारा वर्ग तथा सामान्य वर्ग, दोनों वर्ग के मानव की संकुल अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते हुए नई कविता ने रूढ़ि आडम्बर और जर्जर मूल्यों का विरोध करते हुए विभिन्न सामाजिक जीवन सन्दर्भों का आधुनिक दृष्टि से मूल्यांकन किया। वैयक्तिक सत्तों, वैयक्तिक अनुभूतियों एवं वैयक्तिक चेतना को स्वीकृति देकर सामाजिक हितों की स्थापना की।

सामान्य अर्थ में आधुनिक का अर्थ काल-सापेक्ष है अर्थात् जो कुछ समसामयिक



है, नवीन है वह आधुनिक है। कल जो वर्तमान था आज वह अतीत बन गया है और जो आज आधुनिक है शाश्वत् सत्य जान पड़ता है, वही कल अतीत बन जाएगा। वर्तमान में बहुत कुछ हिस्सा अतीत का भी है। आज जिसे हम आधुनिक कहते हैं वह स्वयं कुछ दिनों बाद अतीत के आईनों में चमक उठता है और फिर उसी अतीत के आधार पर खड़ा वर्तमान हमें नव्यता का बोध कराता है।

नई कविता अपने युग के सम्पूर्ण सन्दर्भों में आधुनिक संवेदना के साथ मानवीय परिवेश और वैविध्य को नये शिल्प में अभिव्यक्त करने वाली हिन्दी की नवीनतम काव्य धारा है। नई कविता प्रजातांत्रिक युग की कविता है जिसमें सभी मतों एवं विचारधाराओं को एक साथ सम्मान दिया जाता है आधुनिक युग में मानव नियति के जिस आयाम को नई कविता में स्थान दिया है, वह बिना बौद्धिकता के सम्भव नहीं। नई कविता समसामायिक हिन्दी काव्य धारा की प्रायः सर्वाधिक स्वीकृत विधा है। उसने अपनी उदार बाँहें फैलाकर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की यथार्थोन्मुखी चेतना को उन्मुक्त हृदय से अपने में समाहित कर लिया है। नई कविता में अगणित विक्षुब्ध तरंगों की गाथा समायी हुई है— मानव, प्रेम और काम, नारी, प्रकृति, ईश्वर और धर्म, विज्ञान, युद्ध, शान्ति, जीवन और मृत्यु, देश, राष्ट्र, विश्व राजनीति आदि। नई कविता की सुदृढ़ पृष्ठभूमि को लेकर अनेक कविता आन्दोलन प्रकाश में आये और ओझल हो गए— मुक्तिबोध, रवीन्द्रनाथ त्यागी, रघुवीर सहाय, अशोक वाजपेयी, पदमधर त्रिपाठी, श्रीकान्त जोशी, गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश वाजपेयी, ममता अग्रवाल, विजय देव नारायण साही, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकान्त देवताले, सौमित्र मोहन, रमेश दबे, मलयज, नीलाभ, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, राजकुमार कुम्भज, शैलेन्द्र चौहान, नरेश कुमार, स्वप्निल श्रीवास्तव, कुँवर नारायण, दुष्यन्त कुमार, प्रणव कुमार बन्धोपाध्याय आदि नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं।

नई कविता में एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता, यथार्थ चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्य एवं नए-नए अर्थों को ध्वनित करने वाला अभिनव प्रतीक विधान आदि जिन्हें नई कविता का कलेवर कहा जा सकता है ये सभी बौद्धिकता के सूचक हैं। इसमें विविध स्थानों से नवीन शब्दों का चयन किया गया है। विज्ञान, दर्शन, भूगोल, मनोविश्लेषण शास्त्र, ग्रामीण व बाजारु बोली आदि का भी खुलकर प्रयोग किया गया है। नये कवियों ने ध्वन्यात्मकता, स्वर मैत्री, रंगों व गंधों का सूक्ष्म ज्ञान बिम्बों के द्वारा भी प्रदर्शित किया है। इन कवियों ने कहीं-कहीं पर लोकगीतों की धुन पर गीत गढ़े हैं तो कहीं मुक्त छन्दों में नई-नई लय और नये-नये स्वर दिये हैं। छन्द के क्षेत्र में किया गया परिवर्तन मुक्ति की भावना के लिए किया गया प्रयत्न मात्र है। मुक्त छन्दमयी प्रत्येक कविता में भावानुकूल शब्दों की संयोजना नये कवियों की अभिव्यक्ति संयम का परिचय देती है। नये कवियों ने परम्पराओं को तोड़े बिना नये-नये प्रयोग सिद्ध किये हैं।

नये कवियों ने नई कविता के माध्यम से इतना कुछ नया दिया है जो सामान्य से विशिष्टता को उजागर करता है। इसी नयेपन की चेतना को झंकृत करने के लिए **‘नई कविता में आधुनिक युग—बोध तथा वैयक्तिक चेतना’** शीर्षक को शोध पत्र का विषय बनाया गया है।

### सन्दर्भ सूची

1. नयी कविता नये कवि, विश्वम्भर मानव
2. नयी कविता का आत्म संघर्ष, मुक्ति बोध
3. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, डॉ० कैलाश वाजपेयी
4. अज्ञेय के नये प्रयोग, डॉ० केदार शर्मा
5. तारसप्तक, अज्ञेय
6. प्रगति और परम्परा, डॉ० रामविलास शर्मा
7. हिन्दी साहित्य कोश— भाग—1, सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा
8. मानक हिन्दी कोश, सम्पादक रामचन्द्र वर्मा
9. भाषा शब्द कोश, सम्पादक रामचन्द्र वर्मा

# नरेश्वर के प्राचीन शिव मंदिर

डॉ. जितेन्द्र शर्मा\* एवं डॉ. योगेश यादव\*\*

उत्तरी मध्यप्रदेश में प्रतिहार वंश की स्थापना से इस क्षेत्र में शैव धर्म को पर्याप्त संरक्षण मिला यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इस काल में यह क्षेत्र शिवमय हो गया था इसी प्रेरणा से ओत-प्रोत होकर नरेश्वर घाटी में भी मंदिरों का निर्माण कराया गया। इस मंदिर समूह का अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसके पास के क्षेत्र में एक समृद्ध बस्ती भी रही थी जिसके प्रमाण यहां देखे जा सकते हैं। इन मंदिरों तक पहुंच मार्ग पश्चिम की तरफ से ही था प्रारम्भिक सर्वेक्षणों में इसी ओर मंदिरों से लगभग 200 मी. की दूरी पर एक प्रवेश द्वार तथा परकोटे के अवशेष मिले हैं। इस घाटी के पास दो सरोवर भी हैं जिसमें स्नान के उपरान्त यहां पूजा अर्चना की जाती रही होगी।

नरेश्वर अथवा नलेश्वर ग्वालियर से उत्तर-पूर्व में लगभग 17 कि.मी. की दूरी पर ग्वालियर भिण्ड मार्ग पर स्थित है।<sup>1</sup> यह स्थान तीन ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ है और एक घाटी नुमा स्थान पर स्थित है जो मुरैना जिले के अंतर्गत आता है। यहां शिव मंदिरों का एक समूह स्थित है। मंदिर क्रमांक 19 से प्राप्त अभिलेख से पता चलता है कि नरेश्वर का प्राचीन नाम नलेश्वर अथवा नरेश्वर था।<sup>2</sup> वर्तमान में स्थानीय लोग इसे नरेश्वरा कहकर संबोधित करते हैं। प्राकृतिक घाटी के सौन्दर्य में सिमटा यह स्थल 8 वीं से 12 वीं शती ई. के मध्य अपनी चरम अवस्था पर था। प्रमुख मंदिर को केदारेश्वर महादेव मंदिर के नाम से जाना जाता है। इसका यह नाम संभवतः केदारनाथ मंदिर के समान घाटी में होने के कारण रखा गया होगा। ये सुविधा की दृष्टि से इन मंदिरों को इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है—

पूर्वाभिमुख मंदिर	—	मंदिर क्रमांक 17,18,22
पश्चिमाभिमुख मंदिर	—	10,11,12,13,20
उत्तराभिमुख मंदिर	—	16,21
दक्षिणाभिमुख मंदिर	—	तालाब के किनारे के प्रारम्भिक मंदिर

यहां से विदित मंदिर क्रमांक 20 का शिखर गज पृष्ठाकार है। जो ग्वालियर दुर्ग स्थित तेली के मंदिर के पश्चात् दूसरी कृति है जिसका शिखर वलभी (गजपृष्ठाकार) प्रकार का है।<sup>3</sup>

\* प्राचार्य, प.श्यामाचरण उपाध्याय महाविद्यालय, मुरैना म.प्र.

\*\* इतिहास अध्ययन शाला जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर

### मंदिर क्रमांक—23

यह मंदिर पश्चिमाभिमुख है और एक ऊंची जगति पर निर्मित है यह मंदिर अलंकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जिसमें खुर, कुम्भ, कलश कपोतिका और एक बड़ा आमलक है। मंदिर



पंचरथ योजना पर निर्मित है जिसमें गर्भग्रह, अंतराल और एक द्वारशाखा का विधान किया गया है।<sup>4</sup> मंदिर के ऊपरी भाग में स्थित तुलापीठ पर विभिन्न प्रकार की आकृतियां उकेरी गई हैं इसके कर्ण और कपिली भाग में रथिकाएँ निर्मित की गई हैं जिनमें देव आकृतियां निर्मित की गई हैं इसमें उत्तरी भद्ररथिका में पार्वती को स्थानक मुद्रा में दिखाया गया है जिसके एक ओर सिंह एवं मध्य में हिरण की आकृति है जो अग्निकुण्ड के सम्मुख प्रदर्शित है पूर्वी भद्ररथिका में मयूरासन कार्तिकेय को प्रदर्शित किया गया है। दक्षिणी भद्ररथिका में गणेश का अंकन किया गया है मंदिर के जंघा भाग के ऊपर घंटमाला का निर्माण किया गया है मंदिर के वरण्डिका भाग में कपोतिका पर एक कमल आकृति का अंकन देखने को मिलता है। मंदिर का द्वार चर्तुशाख है जिसके मध्य गरुड़ को अंकित किया गया है अन्य शाखा पर गंधर्वों को नृत्य मुद्रा में दिखाया गया है नीचे की ओर गंगा यमुना का अंकन है जिनके पास सिर पर छत्र लगाये एक-एक छत्र-धारिणी को भी प्रदर्शित किया गया है।<sup>5</sup>

### मंदिर क्रमांक—17

यह मंदिर पूर्वाभिमुख है और पंचरथ योजना पर आधारित है जिसकी जगति समतल है। जिसमें गर्भग्रह, अंतराल और एक द्वार शाखा का विधान किया गया है जिसे लता वल्लरी और घण्टमाला से सुसज्जित किया गया है।<sup>6</sup> मंदिर के चारों ओर भद्ररथिकाएँ बनी हुई हैं जिसके ऊपर गवाक्ष बने हुए हैं। दक्षिणी भद्ररथिका में लकुलीश को प्रदर्शित किया गया है जबकि उत्तरी भद्ररथिका में चतुर्भुजी शिव को नंदी पर बैठे दिखाया गया है। पश्चिमी भद्ररथिका में कुबेर को प्रदर्शित किया गया है। प्रवेश द्वार चार शाखाओं युक्त है जिसके दोनों ओर गंगा एवं यमुना का अंकन है जिनके साथ में एक-एक छत्र धारिणी को प्रदर्शित किया गया है। मंदिर के बायीं ओर एक अभिलेख भी मिला है जिस पर श्री करकोतकेश्वर देव अंकित है।<sup>7</sup>

### मंदिर क्रमांक-18

यह मंदिर भी पूर्वाभिमुख है मंदिर पंचरथ योजना पर आधारित है किन्तु जंघा भाग पर यह त्रिरथ योजना पर है जिसमें गर्भग्रह, अंतराल और एक द्वार शाखा का विधान किया गया है। मंदिर



की ये सभी वास्तु योजना कम ऊंचाई वाली है अधिष्ठान को खुर, कुम्भ, कलश, कपोतिका आदि से सुसज्जित किया गया है वहीं कपोतिका पर चैत्य गवाक्ष बनाए गये हैं भद्ररथिकाओं को घटपल्लव तथा घण्टमाला से सजाया गया है।<sup>9</sup> दक्षिणी भद्ररथिका में चतुर्भुजी गणेश को स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है जबकि उत्तरी भद्ररथिका में पार्वती को दिखाया गया है। पश्चिमी भद्ररथिका पर कुबेर को प्रदर्शित किया गया है। मंदिर की द्वार शाखा चार भागों में विभाजित है जिस पर मकर वाहिनी गंगा तथा कूर्म वाहिनी यमुना का अंकन है। मंदिर के गर्भग्रह में चौकोर जलाधारी युक्त शिवलिंग विद्यमान है।<sup>9</sup>

### मंदिर क्रमांक-19

यह मंदिर पश्चिमाभिमुख है इस मंदिर का पीछे का कुछ भाग शैलकृत वास्तु योजना पर आधारित है।<sup>10</sup> जबकि द्वार शाखा का भाग प्रस्तर को तराश कर बनाया गया है जो ग्यारसपुर के मालादेवी मंदिर के समान है मंदिर पंचरथ योजना पर आधारित है किन्तु जंघा भाग पर यह त्रि-रथ योजना पर है जिसमें गर्भग्रह, अंतराल और एक द्वार-शाखा का विधान किया गया है। मंदिर की पिछली भद्ररथिका पर चर्तुभुजी पार्वती को प्रदर्शित किया गया है। मंदिर की द्वार-शाखा चार भागों में विभाजित है जिस पर मकर वाहिनी गंगा तथा कूर्म वाहिनी यमुना का अंकन है। इस मंदिर की दीवारों पर दो अभिलेख भी मिले हैं। जिन पर विक्रम संवत् 1202 की तिथि अंकित है इस पर "नलेश्वर देव" अंकित है जबकि दूसरे अभिलेख पर विक्रम संवत् 1329 की तिथि अंकित है।<sup>11</sup>

### मंदिर क्रमांक-20

यह मंदिर पश्चिमाभिमुख है जो सबसे पीछे की ओर निर्मित है यह अपेक्षाकृत

कम ऊंची जगति पर निर्मित है मंदिर की वास्तु योजना में अधिष्ठान को खुर, कुम्भ, कलश, कपोतिका आदि से सुसज्जित किया गया है जिसमें एक पट्टिका पर कमल कलिका को बनाया गया है। मंदिर का शिखर वलभी प्रकार का है मंदिर में गर्भग्रह, अंतराल और एक द्वारशाखा का विधान किया गया है।<sup>12</sup> मंदिर के चारों ओर भद्ररथिकाएँ बनी हुई है जिसके ऊपर गवाक्ष बने हुए हैं। उत्तरी भद्ररथिका में चतुर्भुजा पार्वती को सिंह पर बैठे दिखाया गया है। उत्तर-पूर्वी भद्ररथिका में चतुर्भुजा विष्णु को प्रदर्शित किया गया है वहीं दक्षिण-पूर्वी भद्ररथिका में सूर्य को स्थानक मुद्रा में दिखाया गया है दक्षिणी भद्ररथिका में चतुर्भुजा गणेश को प्रदर्शित किया गया है। मंदिर की भद्ररथिकाओं को घटपल्लव तथा घण्टमाला से सजाया गया है।<sup>13</sup> इसका प्रवेश द्वार चार शाखाओं युक्त है जिसके दोनों ओर गंगा एवं यमुना का अंकन है जिनके साथ में एक-एक छत्र-धारिणी को प्रदर्शित किया गया है। मंदिर का गर्भग्रह सादा प्रकार का है।

### मंदिर क्रमांक-22

यह मंदिर पूर्वाभिमुख है इसमें भी एक गर्भग्रह, अंतराल एवं द्वारशाखा का विधान है यह पंचरथ योजना पर आधारित है जो शिखर पर त्रिरथ हो जाता है अधिष्ठान को खुर, कुम्भ, कलश, कपोतिका आदि से सुसज्जित किया गया है।<sup>14</sup> मंदिर के चारों ओर भद्ररथिकाएँ बनी हुई है जिसके ऊपर गवाक्ष बने हुए हैं। मंदिर की दक्षिणी भद्ररथिका में आसनस्थ लकुलीश को प्रदर्शित किया गया है वहीं पश्चिमी भद्ररथिका में मयूरासन कार्तिकेय को दिखाया गया है।<sup>15</sup> उत्तरी भद्ररथिका नष्ट हो गई है जिसमें संभवतः पार्वती की प्रतिमा रही होगी। द्वारशाखा पर उड़ते हुए विद्याधरों को प्रदर्शित किया गया है जिसके दोनों ओर गंगा एवं यमुना का अंकन है जिनके साथ में एक-एक छत्रधारिणी को प्रदर्शित किया गया है। मंदिर का गर्भग्रह सादा प्रकार का है।

अन्य मंदिर जैसे मंदिर क्रमांक 10,11,12,13,14,15 प्रारम्भिक मंदिर हैं जो एकदम सादा हैं इनके शिखर भाग को भी सादा बनाया गया है इस प्रकार यह मंदिर समूह प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर उत्तराखण्ड के केदारनाथ मंदिर की याद दिलाता है।

### संदर्भ सूची

1. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 47
2. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 47
3. पचौरी, उमा शंकर — पूर्व मध्यकालीन मध्यप्रदेश में शैव शाक्त परम्परा (अप्रकाशित शोध प्रबंध) 1993 पृ. 204

4. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 61
5. सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर
6. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 51
7. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 53
8. सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर
9. सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर
10. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 53
11. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 54
12. त्रिवेदी, आर.डी. —टेम्पल ऑफ प्रतिहार पीरियड इन सेंट्रल इंडिया पृ. 53
13. सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर
14. सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर/त्रिवेदी आर.डी. पृ. 57
15. सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर

# ललित कलाओं में भाव एवं कलात्मक सौन्दर्य

डॉ. राकेश कुमार सिंह\*

प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य में जो आनन्द है वह नगर की कृत्रिम शोभा में कहाँ। जिस गुण या कौशल के कारण किसी वस्तु में उपयोगिता और सुन्दरता आती है उसे कला कहते हैं। अंग्रेजी कवि शैली की राय में कल्पना को अभिव्यक्त करना कला है 'प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान फागुए का कथन है कि "कला भाव की उस अभिव्यक्ति को कहते हैं, जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके। टालस्टाय के शब्दों में "कला मानवीय चेष्टा है।" ललित कला के अन्तरगत वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला और काव्य कला आती है। किसी सुन्दर चित्र या प्रतिमा का कामनीय कलेवर, सुविशाल नेत्र, तीक्ष्ण कटि और अलंकार आदि यदि दर्शकों को आनन्दित नहीं कर सकते हैं तो चित्रकार और मूर्तिकार का प्रयास निष्फल समझना चाहिए। कलाकार के वास्तविक रूप को लालित्य प्रदान करना अन्तरात्मा को लगने वाला कलात्मक सौंदर्य एवं भाव पक्ष ही ललित कलाओं की अभिव्यक्ति करता है। वात्सायन ने "कामसूत्र" में चित्रकला को तीसरा स्थान दिया है परन्तु विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ एवं धर्मार्थ कामयोछादि का दाता माना गया है।

**कलानां प्रवरं चित्रं धर्मं कामार्थमोक्षदम् ।  
मंगल्यं प्रथमं चैतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम् ॥**

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के 43वें अध्याय में चित्रकला की श्रेष्ठता के विषय में स्पष्ट लिखा है—

**यथा सुमेरुः प्रवरो नगानां यथाण उजानां गरुण प्रधानः ।  
यथा नराण्यः प्रवरः क्षिटीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः ॥**

अर्थात् जिस प्रकार पर्वत मालाओं में सुमेरु, पक्षियों में गरुण और मनुष्यों में राजा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार कलाओं में चित्रकला सर्वश्रेष्ठ और मान्य है। सौन्दर्य की साधना ही किसी समाज की संस्कृति के रूप में मान्यता प्राप्त करती है। यह सौन्दर्य की साधना वस्तुगत रूप में कला है और शब्दगत रूप में काव्य या साहित्य दोनों का लक्ष्य एक ही है। सौन्दर्य की यह रचना सौन्दर्य—संतृप्ति और आनन्द प्रदान कर मानव के व्यक्तित्व को पूर्ण बनाती है। उसकी आत्मा का संस्कार करती है और जीवन के प्रति एक अभिनव दृष्टि प्रदान करती हैं भारतीय कला की मूलता कलात्मक अस्तित्व ही भाव प्रधान रहा है इसलिए भारतीय ललित कलाओं की आत्मा भाव पक्ष में निहित है। अगर केवल भारतीय ललित कलाओं को देखें तो इतिहास का सत्य जो भी हो, लोक मानस ही शिल्प और कला की मूल भूमि रही है और आज भी है। कारण

\* डी-17, विश्वविद्यालय परिसर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र-136119, हरियाणा।



संस्कृति की यह प्रवृत्ति होती है कि मानव प्रकृति से दूर होता जाये, वह अधिक शालीन और बौद्धिक हो, अधिक संसय और शास्त्रीय मर्यादाओं का मानने वाला, अधिक शुद्धिवादी, शास्त्रीय मर्यादाओं का बन्धन कला को मान्य नहीं, क्योंकि सृजन और भोग के लिए उसे उन्मुक्त मन चाहिए।

षडंग में भाव और लावण्य को प्राथमिकता अधिक दी गई है। भाव काल को अत्यधिक संवेदनशील बना देता है और लावण्य कला के सौन्दर्य का एक प्रमुख कारण है। अगर कला के इन छः तत्वों के लावण्य को न रखा जाये तो भी भावपक्ष ही सौन्दर्य के रूप में संयोजित कर सकता है लेकिन लावण्य से ही किसी कृति में खिंचाव पैदा होता है। भाव से दर्शक अपनी इन्द्रियों के द्वारा उस अभिव्यक्ति को महसूस करता है जिस अभिव्यक्ति को कलाकार ने महसूस करके उस कृति का निर्माण किया। आकृति मूल कलाओं में भाव पक्ष अति आवश्यक है तथा लावण्य एक ऐसा रसायन का कार्य करता है कि उन भावों के उत्पादन में सौन्दर्य का उत्तम संचारण करता है। ऐसा नहीं कि लावण्य बिना कोई कला नहीं होगी वस्तुतः भावों का होना जरूरी है। प्राचीन युगों में भित्ति चित्रण की परम्परा अधिक प्रचलित थी। मानव की प्रत्येक क्रिया जिसका मनोवैज्ञानिक आधार अवश्य होता है चाहे वह कलात्मक हो या सामान्य। जब मानव मस्तिष्क यथार्थ जगत से पलायन कर लेता है और कल्पना प्रदेश में बिहार करने लगता है तो कला मनोवृत्तियों के सहारे आगे बढ़ती है।

भाव पक्ष की अभिव्यक्ति कलाकार की प्रेरणा, मनोवृत्ति, भावना, इच्छा, परिस्थिति एवं सामाजिक दशा पर निर्भर करती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोजों के परिणाम स्वरूप कलात्मक अभिव्यक्ति में व्यक्ति के अचेतन मन का विशेष महत्त्व है। सभी कलात्मक अभिव्यक्तियों के उद्गम स्थान अचेतन मन में है। संवेग ही कला की कुंजी है, जो अचेतन मन प्रदेश से अचानक बुलबुलों के समान उठते हैं। कला इन्हीं संवेगात्मक अनुभवों को लयात्मक आकारों में व्यवस्थित करती है, कलाकार की रचना उसके मस्तिष्क की कल्पना के अनुरूप होती है। अचेतन की तरंगें जो कलाकृति में रूपायित होती हैं सदैव सार्वभौमिक प्रकृति की होती हैं। मानवीय भाव भी सभी प्राणियों में समान रूप में पाये जाते हैं। इसलिए चित्रित भावों का आनन्द भी सार्वभौमिक है। भाव दो प्रकार के उद्देश्यों को पूरा करता है, प्रथम तो दमित इच्छाओं की गुत्थियाँ अचेतन से बाहर प्रकाशन मार्ग पर जाती हैं। जिससे प्राणी मात्र के जीवन का अभियोजन और सन्तुलन बना रहता है। दूसरा अचेतन की इच्छायें जब कलाकृति के रूप में समाज के सम्मुख आती हैं तो समाज द्वारा उसे मान्यता मिल जाती है तथा वह निर्माता भी पूर्ण सिद्धि को उत्कण्ठा को भी सन्तुष्ट करती है।

भाव मानव का अभिन्न अंग है। इसलिए कला में भाव सबसे अभिन्न है। भाव कोई भी घटना को स्मरण करने पर स्वतः मानव मन से गतिमान होने लगते हैं। कभी—कभी भाव मन में अत्यन्त वेग से उत्पन्न हो जाते हैं और कभी—कभी धीरे—धीरे

मान मन में तैरते रहते हैं। कभी—कभी एक साथ कई भाव उत्पन्न हो जाते हैं और जो सबसे प्रबल होता है वही भाव प्रमुख हो जाता है। बहुधा एक के बाद एक भाव, दूसरे भाव के लिए अवरोध उत्पन्न किये बिना मन में आते हैं जो मन में आते—जाते रहते हैं। कुछ भाव मानव में स्थायी रूप से सुषुप्त रहते हैं पर बहुत कम भाव ऐसे होते हैं जो मन में स्थायी हो पाते हैं और कल्पना या विचार द्वारा जिनका पुनः स्मरण किया जा सकता है। इतिहास जानता है कि नव पाषाण काल के स्थायी जीवन की कुछ ही शताब्दियों में मनुष्य ने इतना सृजन किया है जितना वह पूर्व—पाषाण एवं मध्य पाषाण काल की सहस्राब्दियों के घुमन्तु जीवन में नहीं कर सका था। भाव चेतना की स्फूर्ति है, इसे मूर्ति देना ही सृजन है, विकास है। स्फूर्ति को मूर्तित करना मनुष्य का स्वभाव है। रूप—चेतन स्फूर्ति को मूर्ति में देखना है। रूप—चेतना स्फूर्ति है, इसे मूर्ति देना ही सृजन है, विकास है। स्फूर्ति को मूर्तित करना, मनुष्य का स्वभाव है। रूप चेतना स्फूर्ति को मूर्ति में देखना है। रूप—चेतना का विकास व विस्तार सहज होते हुए भी सभी मनुष्यों के समान नहीं होता। कुछ लोगों में भाव इतने दुर्बल होते हैं कि उठते ही नहीं।

संसार के व्यवहारिक चक्र में परिवर्तन अनिवार्य है और यह परिवर्तन हम किसी वस्तु या भाव के परस्पर विरोधी रूप में भी दिखाई देते हैं, तभी हमें उनकी अनुभूतियों को महसूस कर सकते हैं। अगर पहाड़ है तो समुद्र भी है, अगर रात है तो दिन भी है। ऐसे कई उदाहरणों में स्वभाव का यह परिवर्तन भावों के स्वरूप में भी परिलक्षित होता है। भाव भी इन पदार्थों की भांति विरोधी स्वभाव लिए हुए है। अतः साधारणतया भाव को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. सुखात्मक भाव
2. दुखात्मक भाव

सुखात्मक भावों के अन्तर्गत मानव को सुख पहुँचाने वाले भाव आते हैं— ये हैं रति, ह्रास, उल्लास, विभेद, स्नेह आदि। सुखात्मक भावों की प्रतिक्रिया साधारणतः मानव में सुख की संरचना करती है। दूसरे प्रकार के भावों के अन्तर्गत मानव को दुख पहुँचाने वाले भाव आते हैं— इसके अन्तर्गत वियोग, शोक, क्रोध, भय आदि भाव आते हैं — सुखात्मक एवं दुःखात्मक दोनों ही प्रकार के भाव मानव को सन्तुलित करते हैं। भाव ही चित्र की आत्मा है, भाव ही उत्पत्ति के मुख्यतः दो आधार हैं—

प्रथम—चित्रकार के हृदयस्थ भाव— जिन्होंने वह चित्र में रूपायित करता है।

द्वितीय— चित्र के अवलोकन से रसिक—दर्शक के हृदय में उत्पन्न होने वाला भाव।

कला एकमात्र सौन्दर्य है और यह सौन्दर्य भी अन्य कुछ नहीं केवल एक शक्तिशाली, संप्राण और सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। व्यवहारिक जीवन में हम जिसे असुन्दर और घृण्य कहते हैं वह कलाकार की तूलिका के संस्पर्श से सुन्दर हो सकता है, इसके विपरीत हम जिसे व्यवहारिक जीवन में अत्यन्त वरेण्य, श्रद्धेय और सुन्दर

मानते हैं उसकी अभिव्यक्ति भी यदि कलात्मक ढंग से न हो सकी तो वह किसी भी उद्बुद्ध श्रोता या दर्शक को प्रभावित न कर सकेगी। कला की दृष्टि से वह कृति असुन्दर ही कही जायेगी। सत्य शिव और उपयोगी व्यवहारिक मूल्य हैं। सौन्दर्य ही एकमात्र कलात्मक मूल्य है। इस मूल्य का निर्वचन व्यवहारिक स्तर पर सम्भव नहीं है। व्यवहारिक स्तर पर सौन्दर्य की कोई परिभाषा दी ही नहीं जा सकती। कलाकार जितनी इन्द्रिय संवेग, सशक्त और अप्राण अभिव्यक्ति अपनी कलाकृति में कर पाता है वही उसकी कृति का सौन्दर्य मूल्य है और उसी सौन्दर्य मूल्य के नाते शेक्सपीयर आज भी प्रिय बना हुआ है और तुलसीकृत साहित्य का आनन्द आधुनिक काल में भी उठाया जा सकता है।

कलात्मक सौन्दर्य के पीछे कलाकार की कुशलता के साथ भाव पक्ष सबसे मजबूत होता है साधन की उपयोगिता से कलात्मक सौन्दर्य को विचारणीय दृष्टि से देखा जाना चाहिए। प्राचीनकाल से लेकर आज तक जो भी कलात्मक दृश्यों को देखने से प्रतीत होता है कि भाव पक्ष सबसे शसक्तता से निर्भर करता है। आदिम शिला चित्रों से लेकर पहाड़ी कला तक रेखाओं द्वारा केवल भावों से कलात्मक सौन्दर्य की चेतना का विकास सिद्ध होता है। अनिवार्यता सभी साधनों और सामग्री की होती है मगर कला में सर्वोच्च अनिवार्यता भाव की है भाव से ही रस की निष्पत्ति होती है और रस के द्वारा दृष्टि में उन भावों को ग्रहण करने की शक्ति संचित होती है। भाव कला दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। कला वास्तविक भाव से ही रचित होती है। दृश्य कलाओं के अतिरिक्त श्रव्य कलाओं में भी भावों को मूलमंत्र रूप से स्वीकारा गया है जो भी हो संसार भर की कला कृतियों में कलात्मक प्रभाव की गम्भीरता पायी जा सकती है, क्योंकि प्रेषक और कृति दोनों में समान गहराई होती है।

### सन्दर्भ सूची—

1. कला में संगीत, साहित्य और उदान्त के तत्व— डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा
2. क्रोचे का कला दर्शन— भारतीय चिंतन के प्रकाश में एक अध्ययन—श्री शंकर शुक्ल
3. कला के अन्तः दर्शन— २०वि० साखलकर
4. कला तीर्थ अजन्ता— डॉ. स्वर्ण लता मिश्र
5. हमारी सौन्दर्य सम्पदा— डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा
6. कला सौन्दर्य और समीक्षा—शास्त्र— डॉ. जी०के० अग्रवाल
7. श्री विष्णु धर्मोत्तर में चित्रकला—बद्रीनाथ मालवीय
8. वैदिक कालीन रूपंकर कलाएं— डॉ. जगदीश चंद्रिकेश
9. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका— डॉ. रामजी उपाध्याय।

# उत्तर उपनिवेशवाद की चुनौतियाँ—हिन्दी साहित्य के संदर्भ में

डा० निधि कश्यप\*

उपनिवेशवाद वर्तमान आर्थिक साम्राज्यवाद का ही एक विस्तृत रूप है। उपनिवेशवाद उन आर्थिक, राजनीतिक, एक सामाजिक नीतियों का नाम है, जिन पर चलकर कोई साम्राज्यवादी शक्तियाँ दूसरे क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण बनाए रखती है अथवा उसका विस्तार करती है तथा आर्थिक सत्ता स्थापित करने के बाद वह राजनीतिक सत्ता भी स्थापित कर लेती है, इसी को उपनिवेशवाद कहते हैं। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना इसी तरह से हुई थी। अधिशासी अधीनस्थ देश की न केवल आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक बल्कि उसकी संस्कृति, नैतिक मान्यताओं और भाषा को समाप्त करने का प्रयत्न भी करते हैं तथा वहाँ की जनता को मानसिक रूप से भी दास बना देते हैं।

राजनीतिक उपनिवेश के तुरन्त बाद भारत मानसिक उपनिवेश की मकड़जाल में आ गया। परन्तु विडम्बना यह है कि स्वयं भारत ने आयातित विचार, यांत्रिक उपकरण और बौद्धिक विमर्श को सहर्ष स्वीकार कर आत्मगौरव का विषय बना लिया। यानि स्वयं को उपनिवेश बनने के लिए प्रस्तुत किया। यह पूरा दौर अन्तर्विरोधों का दौर था।

भारतीय और यूरोपीय संस्कृति के अन्तरावलम्बन से जो नवजागरण पैदा हुआ था, वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के अन्तिम दशक में कुछ अधिक पश्चिमोन्मुख हो गया था, जिसका असर राजनीति, कला, संगीत और साहित्य पर भी पड़ा। यहां तक कि अज्ञेय जैसे मनीषी भी जब भारतीय कलाचिन्तन करते थे, तो उनके सारे उदाहरण विदेशी साहित्य से होते थे। “संवत्सर” जैसी उनकी बहुप्रशंसित प्रसिद्ध पुस्तक में भी केवल दो उदाहरण भारतीय रचनाओं से मिलते हैं, शेष सारे विचार एवं उद्धरण पश्चिमी लेखकों से लिये हैं। यह दृष्टि पराधीनता काल से बुद्धिजीवियों — लेखकों में देखने को मिलती है तथा अद्यतन चला आ रही है। जो सीधे अभिधा में न होकर लक्षण में प्रत्यारोपित की जाती रही है, जिसे कभी भूमण्डलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, कभी पूंजीवाद, कभी साम्राज्यवाद, कभी नवजागरण तो कभी उपनिवेशवाद का नाम दिया गया। पश्चिमीकरण में हमने अपना तन, मन, धन ऐसे उपनिवेशवाद के हवाले कर दिया है, जिसमें प्रतिरोध का सवाल ही नहीं उठता। जो आज दुनिया की सबसे बड़ी घातक जकड़न है। प्रभाकर श्रोतीय जी के अनुसार “मुझे एक चित्र उभरता है जिसमें सलीम के देखते-देखते अनारकली के चारों ओर दीवारें

\* असि० प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पी०पी०एन०पी०जी० कालेज, कानपुर

उठ रही है, लेकिन वह जिन्दा दफना दी जाती है और सलीम के लिए बचता है करुण गीत और अनन्त दुःख। क्या हमारे देखते-देखते हमारा देश-भाव दफन नहीं हो रहा है? क्या फिर हमें भारतेन्दु की तरह नहीं लग रहा है कि 'आवहु सब मिल रोवहु भाई! भारत दुर्दशा न देखी जाई।' उपनिवेशवाद केवल भारत ही नहीं, तीसरे देशों की तमाम सभ्यताओं के ताबूत में दुकी अन्तिम कील होगी। क्योंकि यह बन्धन की पराकाष्ठा है। जिसमें बहुलता, स्वाधीनता और समानता की पूरी अवधारण ही चौपट होने जा रही है।<sup>1</sup>

आज साहित्य है क्योंकि साहित्य का एक समाज होता है और जो साहित्य की चुनौतियाँ होती हैं वहीं समाज के सम्मुख भी होती हैं। आज हम उत्तर औपनिवेशिक समाज का संकट झेल रहे हैं, जो उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। संस्कृति और समाज का संकट निरन्तर क्षरित होती हुई मूल्य-व्यवस्था का परिणाम है। इस उत्तर औपनिवेशिक समाज में हमें अपनी पहचान निर्मित करनी थी, जिसकी कोशिशें आधी-अधूरी रही इतना ही नहीं औपनिवेशिक विरासत से ही तमाम रुग्णताएँ भी जुड़ती गयीं, जिन्होंने पूरे जातीय, साँस्कृतिक जीवन को अधिक से अधिक संकटों, चुनौतियों और मुश्किलों से भर दिया। पंकज सिंह के अनुसार — “अब जो भारतीय संस्कृति चेतना है या साहित्य के जो सरोकार हैं, उनमें आजादी के बाद के दौरों में एक तरह का सांस्कृतिक अमरीकीवाद देखने में आया और हिन्दी में उसके कई रूप दिखाई दिए। एक प्रकार की व्यवस्था विरोधी आक्रामकता या टकराव का दौर भी आया। उस आक्रामकता में अतियाँ कई थी, परन्तु एक स्वप्न भी था — एक नया समाज, एक समतामूलक समाज रचने का। इसी के साथ-साथ हिन्दी में एक तरह का वैचारिक क्षरण आया परन्तु धीरे-धीरे पिछली आकृतियाँ क्षीण हुई और अब एक नए किस्म के प्रतिरोध का, विमर्श का स्वभाव हिन्दी विकसित कर रही है। इसमें वैश्वीकरण और बाजारीकरण के साथ-साथ उत्तर आधुनिकता का हस्तक्षेप भी अपने ढंग से हुआ।”<sup>2</sup>

आज हम नए विचारों के जिन थपेड़ों में जी रहे हैं, वह चौतरफा हमें दिग्भ्रमित कर रहे हैं। इस संदर्भ में नाजवर सिंह जी का मानना है कि “साठ के दशक में आधुनिकता और आधुनिकीकरण पर लम्बी बहस चल रही थी और साहित्य दो खेमों में बँटा हुआ था। एक मार्क्सवादी और दूसरा आधुनिकतावादी।” उत्तर उपनिवेशवाद जिसे पोस्ट कोलोनियालिज़्म कहते हैं यह पूरी तरह से पश्चिमी विचारधारा है जो नब्बे के दशक में आई। जो विश्व बाजार एवं वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से आ रहा है जिसका केन्द्र अमरीका है। वस्तुतः पोस्ट-मॉडर्निज़्म एक आइडियोलॉजी है जो फ्रान्स में निर्मित हुई और अमरीका के माध्यम से उत्तर आधुनिकता विश्व विचाराधारा के रूप में सब जगह पहुँची।

1990 के बाद जब साम्राज्यवाद खत्म हुआ तब पोस्ट मॉडर्निज़्म का प्रचार हुआ

जो केवल आइडियोलॉजी का ही हिस्सा है, पालिटिक्स आफ आइडेंटिन्टी, जिसे अस्मिता की राजनीति कहते हैं, उसी राजनीति का अंग है, नारी विमर्श, दलित विमर्श, पिछड़े वर्ग का विमर्श। ये सारा का सारा ही पोस्ट माडर्निस्ट है अर्थात् उत्तर उपनिवेशवाद, बुनियादी रूप से। जिनकी खोज यदि साहित्यकार नहीं करेगा तो एक अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री भी नहीं करेगा और पालिटिशियन इसलिए नहीं कि उनकी दिलचस्पी सिर्फ 'पावर पॉलिटिक्स' में है। दर्शन के लोग सारी चीजें वेदों में ढूँढ़ते हैं।

रीडिंग बदलती है। शेक्सपीयर की रीडिंग बदली। गालिब की रीडिंग उनकी जिन्दगी में ही बदल गयी। देरिदा क्यों कहता है— "मीनिंग इज़ इन्नेट सिन्स द कॉन्टेक्ट इस इनफेनाइट" आखिर साहित्य में वह क्या चीज है, जिसकी वजह से साहित्य की इंटरप्रेटेशन बदलती है तथा जिसकी कोई अन्तिम व्याख्या नहीं होती। इंटरप्रेटेशन खुद द्वन्द्वात्मक है। सन् सैतालिस से अब तक साहित्य में बड़ी तब्दीली हुई। एक बड़ी बात जो उभर कर बार-बार सामने आयी तो वह यह है कि क्या साहित्य सस्टेनिंग है? सेल्फ रेगुलेटिंग है? या ऑटोनोमस है? मार्क्सिस्टों के अनुसार साहित्य ऑटोनोमस है। यदि साहित्य स्वायत्त है तो पोस्ट माडर्निस्ट थिंकिंग ने यह सवाल उठाया कि फिर रीडिंग्स क्यों बदलती है। कैनन्स क्यों बदलता है? क्यों साहित्यकार आज बैकग्राउण्ड में चले जाते हैं? सच तो यह है कि समाज आइडियोलॉजी के नीचे बैठे और आइडियोलॉजी का सबसे बड़ा फर्ज है कि वह समाज को बदले एक खास तरीके से।

यह साहित्य या इंटरप्रेटेशन से काम लेने का तरीका रीजन पर निर्भर था केवल तर्क पर। साहित्य में जो कुछ होता है, वह सब कांशस माइन्ड का खेल नहीं है। यहां पर कांशस, अनकांशस और क्युमुलेटिव अनकांशस के घालमेल से चित्र बनते-बिगड़ते हैं और यदि लेखक अपनी पूरी परम्परा से स्वयं को अलग कर ले तो वह क्या लिखेगा? लेखक एक क्रियेटर है वह एक सुपर कांशस है। उसकी संस्कृति, उसका इमेजिनेशन, उसकी क्रियेटिविटी असल चीज है — जिसे वह रचता है।

लेखक की सब्जेक्टिविटी, उसका दिमाग है। आज तक हमें यह नहीं मालूम कि 'अरेबियन नाइट्स' का आथर कौन है? बहुत सी ऐसी किताबें हैं और हमारी परम्परा में तो और भी ज्यादा क्योंकि हमारे यहां शब्द ही ब्रह्म है अर्थात् शब्द को ही ब्रह्म का दर्जा दिया गया है। हर युग के साथ उसकी अपेक्षा का आयाम बदलता है। मुल्क रातो-रात नए बन जाते हैं। रात के बारह बजे तारीख बदल जाती है, लेकिन संस्कृति और साहित्य में तब्दीलियाँ बहुत ही धीरे-धीरे होती हैं। कहते रहिए साहित्य को "आइवरी टावर"। पर वह "आइवरी टावर" नहीं है, वह जिन्दगी से जुड़ा हुआ है, जैसा प्रेमचन्द के युग से लेकर अब तक। साहित्य का कोई चेहरा आइडियोलॉजी के बगैर नहीं है। संस्कृति आइडियोलॉजी से अलग नहीं है। पालिटिक्स तो सत्ता का खेल है, केवल साहित्य या आर्ट की दुनिया ही ऐसी है कि उससे बड़ा लोकतंत्र कोई

नहीं है। पर अफसोस यह है कि अब साहित्य ने पोजीशन लेना छोड़ दिया है। आज इस उत्तर उपनिवेशवाद के युग में जहाँ साहित्य में विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ, अवसाद और द्वन्द्व हैं, वहाँ इसे अपनी परिभाषा स्वयं बनानी है। अपना वैल्यु सिस्टम खुद आंकना है। जो केवल ओर केवल साहित्य से ही ढूँढी जा सकती है।

### संदर्भ सूची

- 1— प्रभाकर श्रोत्रीय —नया ज्ञानोदय—अंक 9 नवम्बर 2003, पृष्ठ सं० 8
- 2— नया ज्ञानोदय — पंकज सिंह — अंक 1 फरवरी 2003, पृष्ठ सं० 32
- 3— नामवर सिंह — नया ज्ञानोदय — अंक 1 फरवरी 2003, पृष्ठ सं० 33

## समय, समाज एवं ललित कला (भारतीय कला के समसामयिक परिपेक्ष्य में)

डॉ० यतीन्द्र महोबे\*

विचारों की अभिव्यक्ति ही कला है और कलाओं को रचने वाला कलाकार ईश्वर के समतुल्य है। चूँकि ईश्वर सृष्टि का रचियता है और कहीं न कहीं कलाकार भी अपनी पृष्ठभूमि पर अपने विचारों एवं संवेदनाओं को रचता या गढ़ता है। लेकिन सर्वप्रथम मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और इस सामाजिक परिवेश में रहते हुये चिंतन एवं मनन कर ही वह अपने आप को समाज के सम्मुख सिद्ध कर पाता है। चूँकि कला एक मानवीय सृष्टि है, फलस्वरूप कलाकार कला के माध्यम से ही अपनी भावनाओं एवं विचारों को समाज के सामने मंथन हेतु प्रस्तुत करता है।

जहाँ तक मेरा मानना है कि 'कला अतीत का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करती है।' यदि हम प्राचीन भारतीय कलाओं की ओर विहंगम दृष्टि डालें तो पायेंगे कि समय एवं तात्कालीन समाज के साथ इनका कितना गहरा संबंध था। वह कला अपनी गाथा स्वयं कहती प्रतीत होती है, जिसमें हम समाज का चेहरा बड़ी सहजता के साथ देखते हैं।

समय के साथ चीजें बदलती हैं लेकिन आज यह बदलाव इतना तीव्र हो गया है कि देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। ये तीव्र बदलाव समाज के लिये बड़ा ही गंभीर एवं सोचनीय विषय के रूप में सामने आया है। कला व परंपरा का आपसी संबंध आज ऐसा विषय बन गया है जिस पर आज अनेक कलाकारों एवं लेखकों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं। "वर्तमान में भारतीय कला-क्षेत्र में उत्पन्न दिशा-हीनता के कारण हो, चाहे कलाकार के व्यावसायिक महत्वाकांक्षा के अधीन होने का कारण हो, इस विवाद ने अधिक तीव्र स्वरूप अपनाया है। पश्चिमी पॉप संगीत व रॉक का भारतीय संगीत पर बढ़ता प्रभाव डिस्को व ब्रेक जैसे समूह नृत्यों के प्रति शहरी युवाओं का बढ़ता आकर्षण, केवल व्यापारिक दृष्टिकोण ने कलाकारों, साहित्यिकारों व चल-चित्र निर्माताओं के मानस पर जमाया नियंत्रण इन सब तत्वों ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना पर ऐसा जबरदस्त आक्रमण किया है कि भारतीय परंपरा के अस्तित्व को जो खतरा पैदा हुआ है।

वह विचारकों व कला क्षेत्र के लिये चिंता का विषय बन गया है।<sup>1</sup> आज का आधुनिक कलाकार वास्तव में समाज व समय के साथ उचित न्याय नहीं कर पा रहा है। कलाकार विषयगत हो कर अपनी कला का प्रदर्शन नहीं कर रहा है।

---

\*सहायक प्राध्यापक, 'चित्रकला', शास. महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर(म.प्र.) मो०-09826369649



यहाँ आधुनिक कलाकार से तात्पर्य उन युवा व नवकलाकारों से है जिन्होंने बाजारीकरण के प्रभाव में आकर अपने को उसके अनुरूप ढाल दिया है। इन कलाकारों ने अपने साथ-साथ समाज के अस्तित्व को भी समाप्त कर दिया है। मेरा मानना है कि कला सर्वोपरि है फिर उसके बाद बाजार। कला को पहले कला के रूप में पूरा होना है। यदि वास्तव में कलाकार को एक सच्चे कलाकार के रूप में जीना है तो कला में बाजारीकरण के प्रभाव को कम करना अनिवार्य होगा। अन्यथा भविष्य में हम यह भूल जायेंगे कि प्राचीन भारतीय कला ही वह कला थी, जिसने समय व समाज को परस्पर अपने साथ लेकर भारतीय संस्कृति एवं कला-परंपरा की रक्षा का भार अपने कंधे पर लिया था। “आज भारतीय चित्रकला में जो नया परिवर्तन आया है, वह बहुत समय तक नहीं टिक पायेगा, क्योंकि भारतीय संस्कृति से पृथक करके भारतीय चित्रकला को जीवित नहीं रखा जा सकता।”<sup>2</sup> आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के मध्य हम इन कलाओं का अवलोकन करें तो तात्कालिक समय व समाज स्वतः ही अपनी कहानी कहते प्रतीत होते हैं। कला वह प्रतिबिंब है जिसके माध्यम से दर्शक समाज की वर्तमान स्थिति से रूबरू होकर अपने जीवन में प्रेरणापरक परिवर्तन करता है।

मैं उन नवयुवा कलाकारों पर विशेष जोर इसीलिये भी दे रहा हूँ कि मैंने अपने छात्र-जीवन में ऐसे साथी कलाकारों को देखा है जिन्होंने कला के तकनीकी ज्ञान एवं विषयगत विचारों को एक ओर रख ऐसे चित्रों का निर्माण किया था, या कर रहे हैं, जो वर्तमान समय में एक हद तक बाजारीकरण की माँग पूरा करता है। जन साधारण के लिये इन्हे समझना अत्यंत ही कठिन होता है, ऐसी स्थिति में दर्शक उस कला का रसास्वादन प्राप्त करने से वंचित रह जाता है। ये ऐसी चित्र-रचना होती है जो पाश्चात्य प्रभाव एवं अमूर्तन शैली में विकसित होती है।

“बेसिक नॉलेज” के अभाव में इन कलाकारों ने अपनी पहचान एवं असत्तित्व को खो दिया है और “फ्रस्टेशन” जैसी भयानक बिमारी से संघर्ष कर रहे हैं।

मेरा यह मानना है कि एक अच्छी कलाकृति वह नहीं है जो बाजार की माँग को देखते हुये अल्प-समयावधि के लिये चित्रित की जाय। बल्कि मेरी दृष्टि में एक अर्थपूर्ण व सुंदर कलाकृति वह है जो सौंदर्य-बोध को ध्यान में रखते हुये, प्रयोगात्मक होने के साथ ही, समय-समाज के लिये प्रेरणादायक एवं प्रेरणापरक भी हो। एक आम दर्शक जो कला के आधारभूत नियमों से अपरिचित है वह भी कलाकृति से सौ प्रतिशत तो नहीं लेकिन कम से कम तीस प्रतिशत आनंद उससे प्राप्त कर सके। इस सामाजिक परिवेश में हम समाज को नकार नहीं सकते। यदि कोई दर्शक कलाकृति से तीस प्रतिशत आनंद भी प्राप्त कर ले तो, कलाकार के चित्र निर्माण का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

“कला का रूप समाज के साथ एकाकार होकर मानव समाज का अपेक्षित अंग बनता है इसकी शक्ति में वृद्धि होती है, एवं उसके तत्वों का प्रस्फुटन जन-जन में व्याप्त होकर व्यापक बनता है। इसके द्वारा कल्पना शक्ति को बल मिलता है तथा कला-जगत में नवीन सृष्टि का सृजन होता है।”<sup>3</sup> हमारे भारतीय चित्रकला में ऐसे कलाकार पहले भी हुये हैं और आज भी निरंतर अपने समय की सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक व राजनीतिक पक्ष को आधार बनाये हुये प्रयासरत है। जिनके माध्यम से भारतीय चित्रकला के मूल सिद्धांतों को बचाया जा सका है। इन चित्रकारों ने भारतीय चित्रकला के मूल-सिद्धांतों के भावनात्मक एवं सौंदर्यात्मक पक्ष का गहरा अध्ययन किया है, और अपनी कलाकृतियों को नया रूप प्रदान किया है। आज वह कलाकार कलाक्षेत्र में अपनी कला को लेकर पहचाने जाते हैं। रविन्द्रनाथ, नंदलाल बोस, यामिनी राय, अमृता शेरगिल, अवनिन्द्रराथ ठाकुर, बेंद्र, कृष्ण हैब्बार, सूजा, फिदा हुसैन, तैयब मेहता, जतिन दास, गणेश पाइन, नलिनी मालनी, अर्पणा कौर जैसी कलाक्षेत्र की अनेक हस्तियाँ हैं जिन्होंने अपने समय व समाज के अनुरूप चित्रण कार्य किया है और कर रहे हैं। “हुसैन साहब हो या रजा, या कोई और, उन लोगों ने अपनी कला में सामाजिक विषयों को या यथार्थ को उठाया जरूर उसे अभिव्यक्त अपनी तरह से रूपान्तरित करके किया।

एक कलाकार अपने समय, अपने समाज में जो कुछ देखता है, वह जब कला के रूप में बाहर आता है तो ठीक वही नहीं होता जैसा वास्तव में होता है। वह कलाकार के अनुभव में शामिल होकर एक नये रूप में सामने आता है। एक कलाकार का स्तर इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने अनुभव को कितने बेहतर तरीके से नये रूप में अभिव्यक्त कर सकता है, और यही समाज हित में जरूरी है।”<sup>4</sup>

इन सब के बावजूद समसामयिक परिवेश में बाजारीकरण इतना हावी हो गया है कि हमें भारतीय चित्रकला का भविष्य खतरे में दिखाई पड़ता है। आज बड़े-बड़े महानगरों में ऐसी अनेक दीर्घायें खोली जा चुकी हैं जो सिर्फ और सिर्फ बाजार की माँग को पूरा करती है। इन दीर्घाओं में उन युवा कलाकारों की कलाकृतियाँ अधिक दृष्टिगत् होती है जिन्होंने भारतीय कला के मूल सिद्धांतों एवं आधारभूत नियमों को एक तरफ कर दिया है। यह कलाकृतियाँ न ही समाज के लिये उपयोगी व प्रेरणादायक है और न ही वह कला क्षेत्र में स्थायित्वता प्रदान करती है।

आज सबसे बड़ा गंभीर विषय यह है कि हमज न सामान्य को कला से कैसे जोड़े। हम चित्रों में क्या और कैसे दिखायें कि कला और समाज में अंतर्संबंध स्थापित हो सके। “यथार्थ तो हमारे चारों ओर कबाड़ी की दुकान की तरह बिखरा पड़ा है। समय के साथ बदला भी है, पर क्या हमारे चित्रकारों ने हमारी कला चेतना को इतना विकसित किया है कि चित्रों और यथार्थों की दुनिया के बीच आ-जा सके, और इस प्रक्रिया में ऐसा कोई बिंदु ढूँढ सके कि बिखराव में कोई व्यवस्था कोई बानगी, कोई

ढांचा उभरे। तब हम कला चेतना के भागीदार होंगे।”<sup>5</sup> और यह आज समसामयिक परिवेश में ‘समय और समाज के लिये कारगर सिद्ध होगी वहीं दूसरी ओर शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण बदलाव अतिआवश्यक है। मैं यह मानता हूँ कि आज के समसामयिक परिवेश में यदि कला को जन-साधारण से जोड़ना है तो शासन को सभी क्षेत्रों की शिक्षा-पद्धति में कड़े परिवर्तन करने होंगे। मेरी दृष्टि में स्कूल शिक्षा पद्धति को दोष सबसे अधिक है, जिसने कला को आम आदमी से इतना दूर रखा है कि उन्हें इसका सही आनंद प्राप्त ही नहीं हो रहा।

आज सरकार ने देश के हर कोने-कोने में शिक्षा का लाभ लेने हेतु स्कूलों को निर्माण तो करवाया है लेकिन पाठ्यक्रम में ‘कला’ का कोई स्थान नहीं है। जिस प्रकार अन्य विषय एक छात्र के लिये आवश्यक है, वही संगीत और चित्रकला जैसे कलात्मक विषयों को हीन भावना से देखा जा रहा है। आज ये सबसे बड़ा दोष है कि भारत सरकार ही ऐसे विषयों को लेकर गहन चिंतन नहीं कर रही है।

यदि हमे अपने देश को अति-आधुनिकता एवं बाजारीकरण से बचाना है तो कला को समाज से जोड़ना ही होगा। भारत सरकार को अपनी शिक्षा पद्धति में प्राथमिक स्तर से बड़े परिवर्तन करने होंगे। देश में स्कूल शिक्षा में कला को एक आवश्यक विषय के रूप में शामिल किया जाए तो मुझे लगता है कि प्रत्येक घर में एक कलाकार जरूर होगा जो अपने परिवार के सदस्यों को कला की बारीकियों से रूबरू करा सके, साथ ही जब छात्र उच्च शिक्षा में प्रवेश करेगा उस स्थिति में वह एक ऐसी कलाकृति तैयार करेगा जो प्रयोगात्मक होने के साथ ही अर्थपूर्ण होगी, जिसका रसास्वादन वह स्वयं तो करेगा साथ ही दर्शकों के लिये भी वह कला कृति आनंद दायक होगी। चूंकि आज जो स्थिति समय-समाज और कला के मध्य बनी हुई है, वह कला क्षेत्र में उज्ज्वल भविष्य की ओर इशारा नहीं करती।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कला के अंतर्दर्शन—र.वि. साखलकर, राजस्थान ग्रंथ अकादमी जयपुर, पृ.क्र.—18, 2008,
2. चित्रकला एवं लोक कला: विविध आयाम—शेखर चंद जोशी, प्रकाश बुक डिपो बरेली, पृ.क्र.—04
3. कला चिंतन—सौंदर्यात्मक विवेचन, विधु कौशिक, इंटरनेशनल पब्लिसिंग हाउस मेरठ, पृ.क्र.—31, 2002,
4. समकालीन कला, अंक 26 ललित कला अकादमी, नई दिल्ली—मार्च—जून 2005
5. कला समय समाज, प्रयाग शुक्ला, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 1979

## NATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

---

### (Biannual Research Journal)

The Journal is published in both Print and Online versions.

### APPLICATION FOR MEMBERSHIP/RENEWAL

Please give all the necessary details and specific answers  
to the Questions listed below. Any questions if not  
applicable for the Candidate Should be listed and not left out.



Full Name in (Block Letters) \_\_\_\_\_

Father's / Husband's Name \_\_\_\_\_

Address \_\_\_\_\_

Qualification \_\_\_\_\_

Phone Mobile \_\_\_\_\_

E-mail \_\_\_\_\_

Date of Birth \_\_\_\_\_

Subject \_\_\_\_\_

Occupation \_\_\_\_\_

(If research scholar, mention guides name and place of research)

Permanent Address \_\_\_\_\_

\_\_\_\_\_

Name of Reference \_\_\_\_\_

I declare that all statements made in this application are correct.

Date :

Signature of the Applicant

1. Application Received on \_\_\_\_\_
2. Membership No. \_\_\_\_\_
3. Specification fee by Bank draft Rs. \_\_\_\_\_ Received on \_\_\_\_\_

For Teachers/Professionals	–	Rs. 1000.
For Research Scholars/Unemployed	–	Rs. 800.
For Institute	–	Rs. 4500
For Final Year	–	Rs. 4500

**Note :** All correspondence will be made with

**Dr. Hari Om Shankar,**  
Editor-in-chief  
H.No. 5, Cross-9, Tapovan Enclave,  
Sahastradhara Road, Dehradun-248008 (UK)  
Mobile : 9012385589  
E-Mail : hoshankar@yahoo.com  
Department of Drawing & Painting,  
D.A.V. (P.G.) College Dehradun-248001 (UK)

1. Please send you 1 PP size (4 x 4.5 cm) photo for the membership card.
2. Outstation Cheque will not be accepted.